क्या परमात्मा सर्वत्र है ?

ब्र.कु.साधना...

प्राचीन शास्त्रकारों ने मनुष्यों को पापों से बचाने के लिए समय-समय पर जो उपदेश दिये हैं, उनमें उन्होंने परमात्मा को हाजिर-नाजिर या सर्वत्र बताया है ताकि मनुष्य इस भय से कि परमात्मा हमारे सब कर्मों को देखता है, बुरे कर्म न करें। उन ऋषियों या शास्त्रकारों के कुछ प्रसिद्ध वाक्यों को लेकर, मैं इस लेख में स्पष्ट करूंगा कि परमात्मा को सर्वव्यापी बताकर जन-साधारण को निष्पाप बनाने की जो ऋषियों की चेष्टा रही, वह 'सर्वव्यापी' की बजाए परमात्मा को 'परलोक-वासी एवं त्रिकालदर्शी शिव' बताकर ही फलीभूत हो सकती थी। पुराणवादी बताते हैं कि पुराणों में भी ऐसे अनेक वाक्य मिलते हैं जिनसे यह मालूम होता है कि पूर्वकाल में भी परमात्म को सर्वव्यापी नहीं बल्कि अव्यक्त रूप वाला ही मानते थे। दीखता है कि 'परमात्मा सर्वत्र है' - यह मान्यता बाद में प्रचलित हुई और परमात्मा अव्यक्त रूप वाला है - इस मान्यता के साथ येन-केन प्रकारेण मिश्रित हो गई।

इसलिए मैं पहले स्वयं परमपिता परमात्मा द्वारा प्राप्त ज्ञान-दृष्टि के आधार पर यह स्पष्ट करूंगा कि यद्यपि पूर्वोक्त शास्त्रकारों अथवा ऋषियों की भावना शुभ थी तो भी परमात्मा को सर्व बताकर मनुष्यों को सुकर्मा बनाने की जो युक्ति उन्होंने अपनाई वह युक्ति सत्य नहीं थी, क्योंकि वास्तव में परमात्मा सर्वव्यापी नहीं है।

वह परम पुरुष है - परमात्मा तो ब्रह्मलोक का वासी 'परब्रह्म परमेश्वर' है। उसे 'पुरुषोत्तम' अथवा 'परमपुरुष' कहा गया है। 'पुरुष' का अर्थ है - (शरीर रूपी) पुरी में रहने वाला। अत: पुरुष 'आत्मा' ही का पर्यायवाची है। 'परमपुरुष' परमपुरी (शिवपुरी) अथवा परमधाम (परलोक) के वासी को कहते हैं। अत: इससे सिद्ध है कि परमात्मा परलोक अथवा ब्रह्मालोक के वासी है, वह सर्वव्यापी नहीं है।

जब वह परमपुरुष परमधाम से अवतरित होकर साकार मनुष्य-तन रूपी पुरी में आता है तो वह सब पुरुषों (शरीर आत्माओं) की तुलना में उत्तम गुणों वाला और श्रेष्ठ स्वभाव वाला होता है। इसलिए उसे पुरुषोत्तम और उनके धाम के लिए परमधाम इत्यादि नाम आये भी हैं और यहां तक भी कहा है कि इस तन में अवतरित हुआ मैं पुरुषोत्तम अर्थात् परमात्मा हूँ। अत: परमात्मा को सर्वव्यापी मानना भूल है।

'परमात्मा' शब्द का भी वही अर्थ है जो कि 'परमपुरुष' का है क्योंकि 'आत्मा' का एक अर्थ है - 'रहनेवाला'। शरीर रूपी धाम में रहने वाले चैतन्य को 'आत्मा' कहते हैं और परमधाम में रहने वाले चैतन्य स्वरूप को 'परमात्मा' कहते हैं। अतएव परमधाम का वासी होने से परमपुरुष या परमात्मा कहलाने से और साकार तन में अवतरित होकर सर्वोत्तम या पुरुषोत्तम होने से परमात्मा का सर्वव्यापी न होना सिद्ध होता है।

यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे - 'पिण्ड-ब्रह्माण्ड' की उक्ति से भी यही स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वत्र नहीं है। आत्मा पिण्ड (शरीर) में है परंतु पिण्ड में सर्वव्यापी नहीं है। इसी प्रकार परमात्मा ब्रह्माण्ड में है परन्तु वह भी ब्रह्माण्ड में सर्वव्यापी नहीं है बल्कि ब्रह्माण्ड के ऊंचे से ऊंचे भाग, ब्रह्मलोक में उसका वास है, जिस कारण ही परमात्मा को 'ऊंचे से ऊंचा भगवन्त' अथवा पांच तत्वों से पार 'परब्रह्म परमेश्वर' भी कहा है और शास्त्र-शिरोमणि श्रीमद्भगवद्गीता में भी सूर्य और तारागण के प्रकाश के पार ब्रह्म-योनि का धामी बतलाया है।

ब्रह्माण्ड या शिवपुरी - ऊपर जहां ब्रह्माण्ड शब्द का प्रयोग किया गया है वहां लोक-परलोक आदि तीनों लोकों को मिला कर ही 'ब्रह्माण्ड' नाम दिया गया है, क्योंकि आजकल ब्रह्माण्ड के विषय में कई शास्त्रवादियों की ऐसी ही मान्यता है। ब्रह्माण्ड के उस अर्थ को लेते हुए भी परमात्म को ब्रह्मयोनि अथवा परमधाम का धामी तो सिद्ध किया ही गया है, परन्तु यदि ब्रह्माण्ड का वास्तविक अर्थ लिया जाए, जो कि स्वयं परब्रह्म परमेश्वर ने बताया है, तो 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' की उक्ति से बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाता है कि परमात्मा सर्वत्र नहीं है।

वास्तव में 'ब्रह्माण्ड' उस धाम को कहते हैं जहां 'ब्रह्मतत्व' में अण्डाकार परमात्मा शिव तथा अण्डाकार आत्माएं वास करती हों। इसे ही ब्रह्मलोक, ब्रह्मपुरी, शिवपुरी, परलोक इत्यादि नाम भी दिये गये हैं और शास्त्र शिरोमणि गीता में इसे ही ब्रह्मयोनि, महदब्रह्म या ब्रह्मनिर्वाण भी कहा है। 'पिण्डे... ब्रह्माण्डे' की उक्ति से यह संकेत होता है कि आत्मा पिण्ड में निवास करती है और अंगुष्ठाकार (अण्डाकार) है और बिन्दु रूप परमात्मा ब्रह्माण्ड में अर्थात् ब्रह्मलोक में। ब्रह्मलोक या परलोक शब्दों से सिद्ध है कि वहां किसी का निवास है।''

ईश-उपनिषद - ईश उपनिषद को एक मुख्य उपनिषद माना जाता है। इसमें सबसे पहला मंत्र है - 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किच जगत्यां जगत। तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गुध: कस्य स्निधनम।' इसका अर्थ यह है कि 'इस सारे लोक में जो कुछ भी जड़-चेतन रूप जगत है, यह सब ईश्वर से व्याप्त यानी घिरा हुआ है। इसलिए ईश्वर को साथ रखते हुए त्याग-पूर्वक इसे भोगते रहो। इसमें लोलूप नहीं होवो क्योंकि यह सारे भोगने-योग्य पदार्थ किसके हैं? यानि किसी के भी नहीं, केवल ईश्वर ही के हैं।

स्पष्ट है कि इस उपदेश का भाव तो यही है कि मनुष्य जगत् की वस्तुओं को परमात्मा की दी हुई वस्तुएं मानकर जगत् में अनासक्त हो जाए। परन्तु इस शिक्षा को जो परमात्मा की सर्वव्यापकता के साथ जोड़ा गया है, वह जोड़ना व्यर्थ है क्योंकि ईश्वर को सर्वव्यापी मानने के बिना भी हर एक वस्तु ईश्वर की तो है ही। जैसे किसी मकान का एक मालिक मकान में सर्वव्यापक नहीं होता, वैसे ही इस सृष्टि अथवा ब्रह्माण्ड में परमात्मा को सर्वव्यापी नहीं माना जा सकता। अत: अनासक्त होकर जीवन व्यतीत करने की जो शिक्षा है, वह ऐसे भी दी जा सकती थी कि - यह सब चराचर जगत् परमात्मा ही का है, तुम ट्रस्टी होकर निमित्त बनकर, इसे भोगो। और यह कहना वास्तव में यथार्थ भी है क्योंकि गीता के भगवान के महावाक्य हैं कि - हे वत्स, मैं सारे जगत् में व्याप्त नहीं हूँ, न ही यह जगत मुझे में व्याप्त अर्थात् मुझसे घिरा हुआ है। मैं त्रिलोकीनाथ हूँ, इसलिए अनासक्त होकर मेरी याद में रहकर कर्म करो।

ईशावास्य उपनिषद - इसी प्रकार ईशावास्य उपनिषद में एक मंत्र है - ओम् पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात्पर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमदाय पूर्णमेवाशिष्यते।। अर्थात् ब्रह्म या परमेश्वर का स्वरूप सम्पूर्ण है। उसमें कोई न्यूनता या त्रुटि नहीं है। उसकी रचना अर्थात् जो जगत है, उसमें भी वही पूर्ण शक्ति समाई हुई है।

अब, इसमें तो संदेह नहीं कि परमात्मा की रचना अर्थात् सृष्टि-लीला अति अद्भूत और त्रुटि-रहित है। परंतु इस बात को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि इस जगत् में परमात्मा भी सर्वव्यापी है। किसी माली के बगीचे में फूलों, फलों, फव्वारों, हरी-हरी घास इत्यादि की शोभा को देखकर यह अनुमान करना तो ठीक है कि यहां कोई माली है जो कि बुद्धिमान भी है परन्तु उस माली को बाग में सर्वव्यापी मानना तो विवेक और अनुभव के विरुद्ध है। किसी नाटक की कथावस्तु, अभिनय, सज-धज इत्यादि को देखकर यह अनुमान करना तो ठीक है कि इस नाटक का निर्देशक सुयोग्य है किन्तु उससे यह अनुमान करना भूल है कि नाटककार प्रत्येक पात्र एवं दृश्य में व्यापक है। किसी कारखाने की सुंदर व्यवस्था और सुचारू क्रियाकलाप को देखकर यह समझना तो ठीक है कि उस का मैनेजर कोई समर्थ और बुद्धिमान व्यक्ति है परंतु यह समझना गलत है कि वह मैनेजर स्वयं प्रत्येक कर्मचारी अथवा कला-कील में व्यापक है। किसी क्रीड़ा में नियमों के उल्लंघन करने वाले खिलाड़ी को रेफरी द्वारा दण्ड पाता देखकर यह निर्णय करना तो ठीक है कि रेफरी न्यायकारी, एवं पक्षपात-रहित है परंतु उससे यह निष्कर्ष निकालना कि वह क्रीड़ा-स्थल के कण-कण में अथवा प्रत्येक खिलाड़ी की नस-नस में विराजमान है, मिथ्या विचार ही है।

निराकार परमात्मा साकार होकर गीता-ज्ञान देते समय कहते हैं कि - हे अर्जुन मैं तेरे सब जन्मों को जानता हूँ। यह सृष्टि-चक्र मेरी अध्यक्षता में घूमता है... इत्यादि। स्पष्ट है कि भगवान सर्वव्यापी नहीं थे तो भी सर्वज्ञ थे। निराकार परमात्मा तो त्रिकालदर्शी एवं योग-दृष्टा एवं साक्षी होने के कारण सदा सबकुछ पहले ही से जानते हैं, उसमें उनके सर्वव्यापी होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

तत्वमसि या सोहम् - अत: तत्वमसि या सोहम् का जो लक्ष्य भगवान ने दर्शाया है, उसका अर्थ भी ठीक समझ लेना चाहिए। तत्वमसि का अर्थ है - तू वह है या वह तू है। स्वरूप-विस्मृत मनुष्यात्मा को देह अध्यास और विषयासक्ति से छुटाकर पुन: शुद्ध स्वरूप में स्थित करने के लिए भगवान उपदेश करते हैं कि - हे मनुष्य! तू वह अर्थात् शुद्ध आत्मा है, तेरा स्वरूप दिव्य गुण सम्पन्न एवं विकर्मातीत है।

विक्रोली, मुम्बई। ब्र.कु.निलिमा को व्यसनमुक्ति महात्मा गांधी पुरस्कार प्रदान करते हुए महाराष्ट्र के उप-मुख्यमंत्री हर्षवर्धन पाटील और व्यसनमुक्ति समाज कल्याण मंत्री शिवाजी राव मोघे तथा अन्य।

जम्मू-काश्मीर। जम्मू-काश्मीर के स्वास्थ्य मंत्री से आध्यात्मिक चर्चा करते हुए विले-पार्ले की ब्र.कु.अंशुल बहन।

अहमदनगर। सानिया नेहेवाल को ईश्वरीय सौगात भेंट करते हुए ब्र.कु.उषा बहन एवं ब्र.कु.दीपक।

नवसारी। महिला मंडल द्वारा आयोजित कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए ब्र.कु.गीता बहन तथा मंचासीन हैं चेतना बहन, नरेन्द्र भाई, धनसुख भाई तथा अन्य।

सोहम् का अर्थ है - मैं वह हूँ। भगवान से तत्वमसि का मंत्र अथवा सदोपदेश पाकर मनुष्यात्मा निश्चय करती है कि - वह मैं हूँ। अर्थात् मैं वास्तव में शुद्ध स्वरूप, दिव्यगुण सम्पन्न थी। विचार की बात है कि यदि परमात्मा सर्वव्यापी होता अथवा प्रत्येक मनुष्यात्मा स्वयं ही परमात्मा होती हो तो न उसे 'तत्वमसि' का उपदेश करने की आवश्यकता होती और न ही आत्मा को सोहम् के लक्ष्य में स्थित होने का अभ्यास करने की आवश्यकता होती। आवश्यकता तभी होती है जबकि मनुष्यात्मा अल्पज्ञता के कारण स्वरूप-विस्मृत हो जाए और ज्ञान-स्वरूप कल्याणकारी परमात्मा शिव उसे पुन: स्वरूप ज्ञान दें।

उपरोक्त सब दृष्टांतों से सिद्ध है कि परमात्मा अलग है और आत्माएं अलग। परमात्मा 'शिव' अर्थात् पापनाशक एवं मुक्तिदाता है, आत्मा अल्पज्ञ एवं मुक्ति की अभिलाषी है। परमात्मा ज्ञानदाता, स्मरण करने योग्य है और आत्मा को योग का अभ्यास करने की आवश्यकता है। सांख्य दर्शन वालों ने भी आत्माओं को अनादिकाल से अनंतकाल तक अनेक और भिन्न-भिन्न माना है। पातंजलि ने भी योग दर्शन में सांख्य का मत स्वीकार करके परमात्मा जो ही अविनाशी गुरु (शिव) है, से योग लगाने की आवश्यकता बताई है। आत्माओं और परमात्मा की भिन्नता तो न्याय दर्शन वालों ने भी मानी है।